unacademy

All live & structured courses | Lessons by all top Educators | Weekly quizzes & doubt-clearing



Sakshi Singh

Referral Code - sakshipuspraj

उत्तर मध्यकाल: रीतिकाल- 1700-1900

- **नामकरण**
  1. रीतिकाव्य- ग्रियर्सन
  2. अलंकृत काल- मिश्रबंधु
  3. रीतिकाल- शुक्ल
  4. सृन्गार्काल- विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
  5. कला काल- रसाल
  6. अन्धकार काल- त्रिलोचन

- **समय सीमा-**
  - ग्रियर्सन- सं.1580-1690
  - शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामकुमार वर्मा, श्याम सुन्दरदास- सं.1700-1900
  - गणपति चंद्र गुप्त(नगेन्द्र)- 17वीं सदी-19वीं सदी

- **प्रथम कवि-**
  1. सामान्य मत - केशव(1555)
  2. शुक्ल- चिंतामणी(1643)

- **रीति शब्द का अर्थ-** काव्य निरूपण की रीति या काव्य परिपाटी
- **रीति काव्य आम आदमियों की चित्तवृत्तियों का काव्य नहीं है बल्कि सामंत-समाज का प्रतिबिम्ब है**
- **प्रवित्तियां-**
  1. **श्रींगार रस की प्रधानता**
  2. **अलकार बहुलता**
  3. **मुक्तक शैली की प्रधानता**
  4. **ब्रज भाषा का प्रयोग**
  5. **नारी के भोग्य स्वरुप का चित्रण**
  6. **लक्षण-ग्रन्थों की विपुलता**
  7. **प्रकृति का उददीपन रूप में चित्रण**
  8. **चमत्कार प्रदर्शन**

- प्रमुख रीति बद्ध-
  - चिंतामणि-
    - 1609
    - शाहजी भोंसले, शाहजहाँ..
  - भूषण
    - 1613
    - शिवाज, छत्रसाल
  - मतिराम
    - 1617
    - जहाँगीर
  - जसवंत सिंह, मारवाड़ के नरेश
    - 1626-
  - देव
    - 1673,
    - आजमशाह
  - रसलीन- सय्यद गुलाम नबी,
    - 1699
  - भिखारीदास- हिन्दुपति सिंह
  - पद्माकर- 1753
- रीति सिद्ध-
  - बिहारी
    - 1595
    - महाराजा जय सिंह
- रीतिमुक्त
  - रसखान
  - घनानंद
    - प्रेमिका- सुजान
    - 1689
    - मुहम्मदशाह रंगीला
  - बोधा
    - वास्तविक नाम- बुद्धिसेन, पन्ना के नरेश खेत सिंह नें इन्हें 'बोधा' नाम दिया
    - प्रेमिका- सुभान/सुबहान
  - ठाकुर- ठाकुर बुन्देलखंडी
    - आश्रयदाता- जैतपुर नरेश केशरी सिंह
  - आलम- प्रेमिका शेख रंगरेज़िन, औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम
  - द्विजदेव-

रामचंद्र शुक्ल

- हिंदी काव्य अब प्रौढ़ता को पहुँच गया था
- कृपराम – हिततरंगिणी
- मोहनलाल मिश्र - शृंगारसार
- करनेस कवि- कर्नाभारण, श्रुति भूषण, भूपभूषण
- काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले पहल आचार्य केशव नें ही किया. पर हिंदी में रीति ग्रंथों की अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की कविप्रिया के 50 वर्ष बाद से चला और एक भिन्न आदर्श को लेकर केशव के आदर्श को लेकर नहीं.
- केशव अलंकारवादी आचार्य थे।
- हिंदी में रीति ग्रन्थों की परम्परा चिंतामणी त्रिपाठी से चली अतः रीतिकाल का आरम्भ इन्ही से मानना चाहिये.
- चिंतामणी रसवादी आचार्य थे. इनके भाई- मतिराम, भूषण और जटाशंकर
- लक्षण ग्रन्थकार कवियों ने सारे भेद और लक्षण संस्कृत की पुस्तकों से लेकर लिखे हैं.

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- हिंदी साहित्य का अतीत

- **रीतिबदध**- संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर लक्ष्ण देते हुए लिखे गए
  1. केशव
  2. सेनापति
  3. चिंतामणी
  4. कुलपति मिश्र
  5. ग्वाल
  6. जसवंत सिंह
  7. मतिराम
  8. देव
  9. भिखारी
  10. तोष
  11. रासलीन
  12. गोप
  13. दूलह
  14. पद्माकर

- **रीतिसिद्ध-** लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखे किन्तु काव की रचना संस्कृत रीति के आधार पर ही की- **बिहारी, सेनापति, कृष्ण कवि, पजनेस,रसनिधि, नेवाज़, वृंद, बेनी वाजपेयी**
- **रीति मुक्त-** न लक्षण ग्रन्थों की रचना की और ना उनके आधार पर काव्य ही लिखा. इनका प्रेम स्थूल ना हो कर सूक्ष्म था
  1. रसखान
  2. आलम
  3. घनानंद
  4. ठाकुर
  5. बोधा
  6. द्विजदेव

केशवदास

- उपनाम- वेदांती मिश्र
- सम्प्रदाय- निम्बार्क
- समय- 1555-1617
- ओरछा नरेश राम सिंह के भाई इन्द्रजीत के आश्रित कवि
- अलंकारवादी, रामभक्त, रीतिबद्ध कवि
- काव्य शैली- मुक्तक, प्रबंध
- पंक्तियाँ-
  - 'जदपि सुजाति, सुलाक्षिनी, सुवरन सरस सुवृत्त
  - भूषन बिनु न बिराजइ कविता बनिता मित्त'

- भाषा- ब्रज, बुन्देली और संस्कृत तत्सम प्रभावित

❑नगेन्द्र, गणपति चन्द्र गुप्त, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इन्हें रीतिकाल का प्रथम कवि मानते हैं.

❑नाभादास- 'उडगन केशव दास'

❑आ. शुक्ल- कठिन काव्य का प्रेत, केशव को कवि हृदय नहीं मिला था.

❑रामस्वरूप चतुर्वेदी- रामचन्द्रिका छंदों का अजायब घर

❑डॉ. विजयपाल सिंह- कोर्ट का कवि

❑केशव में सूर तुलसी आदि की सरसता और तन्मयता चाहे न हो पीआर काव्यागो का विस्तृत परिचय करा कर उन्होने आगे के लिए रास्ता खोला।-शुक्ल

- **<u>केशव दास की रचनाएँ-</u>**
  1. रसिकप्रिया- 1591, रस निरूपक, नायिका भेद, 16 प्रकाश, रूद्रभट्ट के श्रृंगार तिलक से प्रभावित
  2. नखशिख- 1600
  3. रामचन्द्रिका- 1601, प्रबंध काव्य, रीतिकालीन संवाद योजना की सर्वोच्च रचना, प्रसन्नराघाव, हमुमन्नाटक, अनर्घराघव और नैषाध की बहुत सी उक्तियों का अनुवाद रखा गया है। 'मातु कहाँ नृपतात....'हनुमन्नाटक के एक पद का अनुवाद है।
  4. कविप्रिया- 1601, अलंकार ग्रन्थ, काव्य दोष, ओरछा की नर्तकी राय प्रवीण' को शिक्षा देने के लिए लिखी गई मानी जाती है
  5. छन्दमाल-1602
  6. रतन बावनी- 1606, वीर रस, डिंगल भाषा, छप्पय छंद
  7. वीर सिंह देव चरित- 1607, प्रबंध काव्य
  8. विज्ञान गीता- 1610, प्रबोध चंद्रोदय की शैली पर लिखा गया
  9. जहाँगीर जस चन्द्रिका- 1612, प्रशस्ति काव्य

Question

archna yadav

Mam telegram channel ka link do...

*Disclaimer: The content is provided by the Learner and is reproduced 'As Is' and Unacademy disclaims any and all liabilities with regards to the content

सेनापति

❑जन्मकाल- सं. 1646(सन् 1589) के आसपास

❑स्थान- अनूपशहर

❑प्रमुख रचना- कवित्तरत्नाकर, काव्यकल्पद्रुम

❑ऋतुवर्णन तो इनके जैसा और किसी शृंगारी कवि नें न्नहीन किया।....पद विन्यास भी इनका ललित है।....ये अपने समय के भावुक और निपुण कवि थे। ....इनकी गर्वोक्तियाँ खटकती नहीं, उचित जान पड़ती हैं।....भाषा पर ऐसा अधिकार कम कवियों का देखा जाता है। इनकी भाषा में बहुत कुछ माधुर्य ब्रज भाषा का ही है।---शुक्ल

❑आचार्य शुक्ल इन्हे रामोपासक कवि मानते हैं।

❑प्रमुख पंक्तियाँ

1. "नाहीं नाहीं करे, थोरो मांगे सब देन कहे
   मंगन को देखि पट देत बार-बार हैं"- श्लेष अलंकार
2. मेरे जान पौन सीरी ठौर को पकारि काहु/ घरी एक बैठि कहूँ घाम बितवत हैं....
3. ज्वालन के जाल, बिकराल बरस्त हैं/ छाह को पकरी पंथी पंछी बिरमत हैं...
4. बालि को सपूत कपिकुल पुरहूत/ रघुवीर जू को दूत धरि रूप विकराल को...

बिहारी

❑जन्मकाल- सन्- 1595

- बिहारी सतसई- दोहा छंद, परिनिष्ठित ब्रज
- राधाचरण गोस्वामी- 'पियूष वर्षी मेघ'
- ग्रियर्सन- बिहारी सतसई के सामान यूरोप में कोई रचना नहीं है.
- सतासई पर प्रभाव- हाल की गाहा सतसई, अमरूक सतक, गोवर्धनाचार्य- आर्या सतसई.

• सतसई पर 50 से अधिक टीकाएँ लिखी गईं-

- सूरति मिश्र- अमर चन्द्रिका
- लल्लू ला- लाल चन्द्रिका
- पद्म सिंह शर्मा- संजीवनी भाष्य
- जगन्नाथ दास रत्नाकर- बिहारी रत्नाकर,1921

• <u>शुक्ल</u>

- इसका एक-एक दोहा हिंदी साहित्य में एक-एक रत्न माना जाता है.
- जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समाहार क्षमता जितनी अधिक होगी वह मुक्तक की रचना में सफल होगा. यह क्षमता बिहारी में पूर्णरूप से थी.
- यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता.
- भावों का बहुत उत्कृष्ट और उदात्त स्वरुप बिहारी में नहीं मिलता. उनकी कविता श्रींगारू है पर प्रेम की उच्च भूमि पर नहीं पहुँचती नीचे ही रह जाती है.

• देव और बिहारी विवाद

1. हिंदी नवरत्न- देव बड़े की बिहारी विवाद शुरू हुआ. मिश्र बधुओं ने 'देव' को बड़ा कवि मानते हुए तुलसी और सूर के समकक्ष माना.
2. बिहारी सतसई: तुलनात्मक अध्ययन- पद्म सिंह शर्मा, 'बिहारी'
3. देव और बिहारी- कृष्ण बिहारी मिश्र, देव
4. बिहारी और देव- लाला भगवानदीन, बिहारी

भूषण

- जन्मकाल- 1613
- आश्रयदाता- शिवाजी, छत्रसाल
- चित्रकूट के सोलंकी राजा रूद्र ने इन्हे 'कविभूषण' की उपाधि दी थी
- रचनाएँ- शिवराजभूषण, शिवाबावनी, छात्रसालदशक, भूषणउल्लास, दूषणउल्लास, भूषणहजारा
- शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई झूठी खुसामद नहीं कह सकता....वे हिन्दू जाति के प्रतिनिधि कवि हैं'।---शुक्ल
- पंक्तियाँ-
  1. तेज तं अंस पर, कान्ह जिमी कंस पर,/ त्यों म्लेच्छ वीएनएस पर सेर सिवराज हैं"।
  2. दारा की न दौर यह, रार नहीं खुजबे की...
  3. सिवा को बखानौ कि बखानौ छात्रपाल को...

मतिराम

❑जन्मकाल- 1617
❑आश्रयदाता- जहांगीर, स्वरूप सिंह बुंदेला, ज्ञानचन्द, भाव सिंह हाड़ा
❑रचनाएँ-

1. ललित ललाम(भाव सिंह हाड़ा), अलंकार ग्रंथ
2. छंदसार(महाराज शम्भूनाथ सोलंकी), पिंगल ग्रंथ
3. रसराज, साहित्यसार, लक्षण शृंगार,
4. मतिराम सतसई- इसके दोहे सरसता में बिहारी के दोहों के समान ही हैं

❑इनकी सरलता अत्यंत स्वाभाविक है, ना तो इसमें भावों की कृत्रिमता है ना भाषा की-- शुक्ल
❑पंक्तियाँ-

1. कुन्दन को रंग फिको लागे/झलके अति अंगन चारु गोराई
2. को बिनु मोल बिकाट नहीं मतिराम लहे मतिराम लहे मुसुकान मिठाई

देव

- **जन्मकाल-** 1673
- **आश्रयदाता-** आजमशाह, भवानीदत्त वैश्य
- **रचनाएँ-** रीतिकालीन कवियों में सबसे अधिक रचनाएँ देव ई मानी गई, 52 या 72-
  - भावविलास, भवानी विलास, अष्टयाम, सुजान विनोद, प्रेमतरंग, काव्यरसायन या शब्द रसायन, देवचरित, प्रेम चंद्रिका, जगतदर्शन पचीसी, जातिविलास, प्रेमदीपिका, नखशिख
- अष्टयाम तो रात-दिन के भोगविलास की चर्या है जो मानों उस काल के अकर्मण्य और विलासी राजाओं के सामने कालयापन विधि का ब्योरा पेश करने के लिए बनी थी।
- ये आचार्य और कवि दोनों रूपून में हमारे सामने आते हैं।
- **पंक्तियाँ-**
  1. अभिधा उत्तम काव्य है मध्य लक्षणा लीन...
  2. डार द्रुम पालना, बिछौना नव पल्लव को/सुमन झँगुला सोहे तन छबि भारी दे...
  3. सांसन ही में समीर गयो अरु आसुन ही सब नीर गयो ढरी...

- **रीतिकालीन कवियों का काल क्रम-**
  - रसखान—केशव—बिहार—चिंतामणि—भूषण—मतिराम—देव—घनानद—पद्माकर
- **रीति मुक्त-** रसखान-आलम-घनानंद-बोधा-ठाकुर-द्विजदेव

❑**चिंतामणि**- शक्ल के अनुसार प्रथम कवि, भूषण मैतिराम के भाई. रसवादी.

❑**भूषण**

- वीर रस के कवि
- चित्रकूट के शासक रूद्र ने इन्हें भूषण नाम दिया
- वास्तविक नाम- गणपति चन्द्र गप्त 'पतिराम या मणिराम', आ. विश्वेनाथ प्रसाद मिश्र- घनश्याम
- शक्ल- भूषन के वीर रस के उदगार साड़ी जैनता की हृदय की सम्पत्ति हुए....वे हिन्दू जाती के प्रतिनिधि कवि थे.
- रचनाएँ- शिवराज भूषण, शिवाबावानी, छत्रसाल दशक

- **जसवंत सिंह**
  - आचार्य या शिक्षक के रूप में प्रसिद्ध हैं.
  - रचनाएं- भाषा भूषण- अलंकार निरूपण
  - प्रबोध चंद्रोदय- संस्कृत कवि कृष्ण मिश्र के प्रबोध चन्द्रोदय का ब्रजभाषा में पद्यानुवाद

- **देव**
  - मूल नाम- देवदत्त
  - 'सुख सागर तरंग' का सम्पादन मिश्र बन्धुओं के पिता बाल्दत्त मिश्र नें किया
  - डॉ. नगेंद्र सुखसागर तरंग को नायिका भेद का विशोव्कोशात्म्क ग्रन्थ माना.
  - सेंगर इनकी रचनाएँ 72 मानते हैं, शुक्ल 23 व अन्य 52.
  - अभिधा उत्तम काव्य है मध्य लक्षणा हीन अधम व्यंजना रसबिरस, उल्टी कहत प्रवीण
  - रामस्वरूप चतुर्वेदी- देव की ध्वनि-सम्वेदनशीलता रीतिकालीन काव्य भाषा में अप्रतिम है.
  - शक्ल- रीतिकालीन कवियों में ये बड़े ही प्रतिभा सम्पन्न कवी थे

- **रसलीन-** अंग दर्पण, रस प्रबोध
- **भिखारिदास-** काव्य निर्णय, श्रृंगार निर्णय, नाम प्रकाश, अमर प्रकाश, छंद प्रकाश, शतरंज शतिका, विष्णु पुराण भाषा.
- **पद्माकर भट्ट-**
  - हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्माभारण, जगादविनोद, प्रबोध पचासा, गंगा लहरी, प्रताप सिंह विरुदावली, कलि पच्चीसी, राम रसायन, आलीजाह प्रकाश.
- **आलम-** आलमकेली, माधवानलकामकंदला, स्याम सनेही, सुदामा चरित
- **शुक्ल-**
  - प्रेमोंमत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे, इनकी रचनाओं में हृदय तत्व की प्रधानता है. प्रेम की पीर या इश्क का दर्द इनके एक-एक वाक्य में है.
- **घनानंद-**
  - सुजानसार, इश्कलता, विरह लीला(ब्रजभाषा,फारसी छंद), वियोगबेली, कोक्सार, कृपाकंद, रसकेलि वल्लि,यामुनायश
  - शुक्ल-
    - ✓ इनकी सी ब्रजभाषा लिखने में कोई और समर्थ नहीं हुआ.
    - ✓ प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा में दूसरा कवि नहीं हुआ.
  - दिनकर- घनानंद की पीड़ा की तीस सहसा ही हृदय को चीर देती है.
- **बोधा-** विराहवारीश, इश्कनामा
- **ठाकुर-** सच्ची उमंग के कवि
- **द्विजदेव**-ब्रज भाषा परम्परा का अंतिम कवि, श्रृंगार लतिका, श्रृंगार बतीसी

❑रीतिकाल के अन्य कवि

- कुलपति मिश्र-संग्राम सार, रस रहस्य, द्रौणपर्व
- सोमनाथ
- रसिक गोविन्द
- प्रताप साही- व्यंगार्थ कौमुदी, काव्यविलास,अलंकार चिंतामणि
- ग्वाल- यमुना लहरी, कृष्ण जू का नखशिख, राधाशतक,
- तोष- विनय शतक
- रसलीन- अंगदर्पण, रस प्रबोध
- बेनी प्रवीण- नवरस तरंग, श्रृंगार भूषण
- सुखदेव मिश्र- रसार्नव
- दूलह- कविकुलकंठाभरण
- वृन्द- बारहमासा, भाव पंचासिका
- रसनिधि- रतन हजारा
- नवाज- राम सहाय
- पजनेस- रसात्नावाली
- मंडन- जानकी जू का ब्याह,
- रघुराज सिंह- राम स्वयंवर

- **सर्वांग निरूपक ग्रन्थ**
  1. चिंतामणि- कविकुलकल्पतरु
  2. कुलपति मिश्र- रस रहस्य
  3. देव- काव्य रसायन
  4. सूरती मिश्र- काव सिद्धांत
  5. भ्खैदास- काव्य निर्णय
  6. प्रताप साही- काव्य विलास
- **छंद निरूपक ग्रन्थ**
  - चिंतामणि- पिंगल
  - मतिराम- छंद सार
  - सुखदेव मिश्र- वृत्त विचार
  - भिखारी दास- छन्दार्नव
- **रस निरूपक**
  - तोष- सुधा निधि
  - मतिराम- रसराज
  - देव- भाव, भवानी, रस विलास
  - भिखारीदास- रस सारांस, श्रृंगार निर्णय
  - रसलीं-रस प्रबोध
  - पद्माकर- जगाद्विनोद
  - बेनी प्रवीण- नवरस तरंग
  - प्रताप साही- व्यंगार्थ कौमुदी
  - ग्वाल- रसरंग
  - बेनी बंदीजन- रस विलास
  - लाल कवि- विष्णु विलास
  - यशवंत सिंह- श्रृंगार शिरोमणि

- **नीतिकाव्य**
  1. गिरधर कविराय- स्फुट कुण्डलिया
  2. सम्मन- स्फुट दोहा, पिंगल काव्यभूषण
  3. बैताल- कुण्डलिया, विक्रम को सम्बोधित कर के लिखीं.
  4. दीनदयाल गिरी- दृष्टांत तरंगिणी
- **वीर काव्य**
  1. लाल कवि- छत्र प्रकाश
  2. सूदन- सुजान चरित
  3. खुमान- नृसिंह चरित्र
  4. बाँकिदास- वीर विनोद
- **भक्ति काव्य**
  - यारी साहब- बावरी सम्प्रदाय
  - दरिया साहब- ज्ञानदीपक
  - तेगबहादुर- आदिग्रंथ
  - अक्षर अनन्य- ध्यान योग, विज्ञान योग
  - सहजो बाई- सझ प्रकाश
  - शेख निसार- युसूफ जुलेखा
  - विश्वनाथ- आनंद रघुनंद नाटक
  - गुमान मिश्र- कृष्ण चन्द्रिका, नैषध काव्य
  - ब्रजवासिदास- ब्रजविलास
- **हास्य-व्यंग्य**
  - अली मुहीब खां प्रीतम- खटमल बाईसी

रीति काल-स्पेसल

⑨ सुखदेव मिश्र - दौलतपुर (रायबरेली)

↳ वृत्तविचार
↳ छंदविचार
↳ काव्यसिद्धांत प्रकाश
↳ रसार्णव
↳ शृंगार लता
↳ अद्वैतात्मप्रकाश
↳ दशरथ राय

⑩ कालिदास त्रिवेदी

↳ वारवधू विनोद
↳ जैजीराबंद
↳ राधा माधव बुधामिलन
↳ कालिदास हजारा — इसके संबंध में शिवसिंह सरोज में लिखा है कि इसमें संवत 1481 से लेकर संवत 1776 तक के 212 कवियों के 1000 पद्य संगृहीत हैं। कवियों के काल आदि निर्धारण में यह ग्रंथ बड़ा ही उपयोगी है। इनके पुत्र कवींद्र और पौत्र दुलह भी बड़े अच्छे कवि हुए।

⑪ राम :-
↳ शृंगार सौरभ — नायिका भेद
↳ हनुमान नाटक

पंक्ति "कहैं कवि राम लखि चमक्र खद्योतन की
दीपन को रही मैं तो बरजि बरजि कै॥"

⑫ नेवाज :-
• ये अन्तर्वेद के रहने वाले ब्राह्मण थे
• पन्ना नरेश महाराजा हिंदूपति के आश्रित थे
• शकुंतला नाटक : सं. 1737
↳ दोहा - चौपाई शैली

पंक्ति ① "कान्ह पियारे तिहारे लिए सिगरे ब्रज को हँसिबो सहौ है।"
② "बावरी! जो पै कलंक लग्यौ तौ निसंक ह्वै
क्यों नहिं अंक लगावती... ॥"

⑭ गिरिधर / मुरलीधर — जंगनामा

⑯ कवींद्र (उदयन) — रस चन्द्रोदय, विनोद चंद्रिका

⑰ गोपीपति — काव्यसरोज (रीतिग्रन्थ)
→ "काव्यांगों का निरूपण जिस स्पष्टता के साथ इन्होंने किया है उससे इनकी स्वच्छ बुद्धि का परिचय मिलता है।" — शुक्ल

⑱ वीर — कृष्ण चान्द्रिका

⑲ कृष्ण कवि — ये बिहारी के पुत्र प्रसिद्ध हैं।

⑳ रसिक सुमति - अलंकार चन्द्रोदय

रीतिकाल

समय सीमा :-

1). शुक्ल - सं. 1700 - 1900 तक
2). विश्वनाथ त्रिपाठी - सन् 1700 - 1850 तक
3). गणपति चन्द्र गुप्त - सत्रहवीं से उन्नीसवीं सदी तक
4). सर्वेक्षण अवधारणा - सन् 1700 - 1850 या 1857 तक

नामकरण :-

① रीतिकाव्य — → ग्रॉर्ज ग्रियर्सन
② रीति काल — → आचार्य शुक्ल / रामकुमार वर्मा
③ अलंकृत काल — → मिश्र बन्धु
④ शृंगार काल — → विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
⑤ कला - काल — → रमाशंकर शुक्ल रसाल
⑥ उत्तर मध्यकाल — → कालगत नामकरण - शुक्ल

प्रवृत्तियाँ

① मुख्य प्रवृत्तियाँ — रीति निरूपण, शृंगारिकता
② गौण प्रवृत्तियाँ — राज प्रशस्ति, भक्ति, नीति

सामान्य परिचय

विश्वनाथ त्रिपाठी

- निर्दिष्ट काव्य प्रणाली या रीति कविता करना साहित्य का प्रधान लक्ष्य माना गया
- हजारी प्रसाद द्विवेदी — "इस समय आर्थिक दृष्टि से समाज में स्पष्ट रूप से दो श्रेणियाँ हो गई — एक तो उत्पादक वर्ग, जिसमें प्रधान रूप से किसान और किसानी से संबंध रखने वाली जातियाँ - बढ़ई, लोहार, कहार, जुलाहा इत्यादि थीं, और इसरी वर्ग भोक्ता (राजा, रईस या नवाब) या भोक्तृत्व का सहायक था।"
- कवियों ने लक्षण - ग्रंथों को कविता करने का बहाना बनाय
- कविता में भक्ति के स्थान पर लौकिक शृंगारिकता बढ़ी।
- कविता का स्वरूप दरबारी हो गया।
- मुक्तक अधिक लिखे गए।
- प्राकृत - अपभ्रंश की शुद्ध इहलौकिक काव्य - धारा फिर से प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है।
- कविता का परम उत्कर्ष प्रेम के रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में मिलता है।

सामान्य परिचय

गणेश कुमार - हिन्दी साहित्य का इतिहास (सं. नगेन्द्र)

- इस युग में कवि दाय्यौग-चर्चा में उसी प्रकार गौरव का अनुभव करते थे जिस प्रकार कि कहुमरान विलयक चर्चा मार्केटकाल में जन-सामान्य के लिए गौरव की बात थी।
- यह काल मुगलों के शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष और उसके बाद उत्तरोत्तर ह्रास, पतन और विनाश का युग कहा जा सकता है।
- इस युग में सामन्तवाद का बोलबाला था।
- सांस्कृतिक अवस्था भी अत्यन्त शोचनीय थी।
- साहित्य और कला की दृष्टि से यह समृद्ध युग था।
- संस्कृत काव्यशास्त्र 'रीति' शब्द काव्य रचना के मार्ग अथवा पद्धति विशेष के अर्थ में ही व्यवहृत हुआ है। मध्ययुगीन कवियों ने भी रीति को इसी अर्थ में अभिहीत किया। यथा:

(1) चिन्तामणि – "रीति सुभग्गा कवित की बरनत बुद्ध अनुसार"
(कविकुलकल्पतरु)

(2) भूषण – "सुकविन हूँ की कछु कृपा समुझि कविन को पंथ"
(शिवराज भूषण)

(3) देव – "अपनी-अपनी रीति के काव्य और कवि रीति"
(शब्दरसायन)

(4) मिश्रबन्धु दास – "काव्य की रीति सिख्यौ सुकविन्ह सों।"
(काव्य निर्णय)

(1)

(1) भाषाभूषण – जसवंत सिंह
(2) इलहू – कविकुलकण्ठाभरण
(3) रसरत्न – तुलसीभरण

लक्षण-ग्रन्थ

(2)

(1) चिन्तामणि – कविकुलकल्पतरु
(2) मतिराम – रसराज, ललितललाम
अलंकार पंचाशिका
(3) भूषण – शिवराजभूषण
(4) देव – भावविलास, शब्दरसायन
रसविलास
(5) गोप – रामचन्द्र भूषण, रामचन्द्राभरण
(6) दास – काव्यनिर्णय, रससारांश
शृंगार निर्णय
(7) पद्माकर – जगद्विनोद
(8) ग्वाल – रसिक गोविन्द

लक्षण + उदाहरण

रीतिकालीन कवियों के कालक्रम

(1) केशव — 1555 - 1617 ई.
(2) सेनापति — 1589 ई.
(3) बिहारी — 1595 - 1663 ई.
(4) रसनिधि — 1603 - 1660 ई.
(5) चिन्तामणि — 1609 - 1685
(6) भूषण — 1613 - 1715
(7) मतिराम — 1617
(8) जसवंत सिंह → 1626 - 1688
(9) देव — — → 1673 - 1767
(10) रसलीन — → 1699 - 1750
(11) भिखारी दास →
(12) पद्माकर → 1753 - 1833

चिन्तामणि - उत्तम विवेचन, ग्रन्थ प्रकाश, उद्धरण उल्लेख

हुए पुराने आचार्यों (भामह, उद्भट आदि) के मार्ग पर न चलकर परवर्ती आचार्यों के परिष्कृत मार्ग पर चली जिसमें अलंकार अलंकार्य का भेद हो गया था। हिन्दी के अलंकारग्रंथ अधिकतर 'चंद्रालोक' और 'कुवलयानंद' के अनुसार निर्मित हुए। कुछ ग्रंथों में 'काव्यप्रकाश' और 'साहित्यदर्पण' का भी आधार पाया जाता है। काव्य के स्वरूप और अंगों के संबंध में हिन्दी के रीतिकार कवियों ने संस्कृत के इन परवर्ती ग्रंथों का मत ग्रहण किया। इस प्रकार दैवयोग से संस्कृत साहित्यशास्त्र के इतिहास की संक्षिप्त उद्धरणी हिन्दी में हो गई।

हिन्दी रीतिग्रंथों की परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से चली, अतः रीतिकाल का आरंभ उन्हीं से मानना चाहिए। उन्होंने संवत् 1700 के कुछ आगे पीछे 'काव्यविवेक', 'कविकुलकल्पतरु' और 'काव्यप्रकाश' ये तीन ग्रंथ लिखकर काव्य के सब अंगों का पूरा निरूपण किया और पिंगल या छंदशास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। उसके उपरांत तो लक्षणग्रंथों की भरमार सी होने लगी। कवियों ने कविता लिखने की एक प्रणाली ही बना ली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना फिर उसके उदाहरण के रूप में कवित्त या सवैया लिखना। हिन्दी साहित्य में यह अनूठा दृश्य खड़ा हुआ। संस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य दो भिन्न भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति रहे। हिन्दी काव्यक्षेत्र में यह भेद लुप्त सा हो गया। इस एकीकरण का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म में प्रवृत्त हो जाते थे। काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन मंडन, नए नए सिद्धांतों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ। इसका कारण यह भी था कि उस समय गद्य का विकास नहीं हुआ था। जो कुछ लिखा जाता था वह पद्य में ही लिखा जाता था। पद्य में किसी बात की सम्यक् मीमांसा या उस पर तर्क वितर्क हो नहीं सकता। इस अवस्था में 'चंद्रालोक' की यह पद्धति ही सुगम दिखाई पड़ी कि एक श्लोक या एक चरण में ही लक्षण कहकर छुट्टी ली।

उपर्युक्त बातों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में लक्षणग्रंथ की परिपाटी पर रचना करनेवाले जो सैकड़ों कवि हुए हैं वे आचार्य की कोटि में नहीं आ सकते। वे वास्तव में कवि ही थे। उनमें आचार्य के गुण नहीं थे। उनके अपर्याप्त लक्षण साहित्यशास्त्र का सम्यक् बोध कराने में असमर्थ हैं। बहुत स्थलों पर तो उनके द्वारा अलंकार आदि के स्वरूप का भी ठीक ठीक बोध नहीं हो सकता। कहीं कहीं तो उदाहरण भी ठीक नहीं हैं। 'शब्दशक्ति' का विषय तो दो ही चार कवियों ने नाममात्र के लिए लिया है जिससे उस विषय का स्पष्ट बोध होना तो दूर रहा, कहीं कहीं भ्रांत धारणा अवश्य उत्पन्न हो सकती है। काव्य के साधारणतः

दो भेद किए जाते हैं—श्रव्य और दृश्य। इनमें से दृश्य काव्य का निरूपण तो छोड़ ही दिया गया। सारांश यह कि इन रीतियों पर ही निर्भर रहनेवाले व्यक्ति का साहित्यज्ञान कच्चा ही समझना चाहिए। यह सब लिखने का अभिप्राय यही केवल इतना ही है कि यह न समझा जाय की रीतिकाल के भीतर साहित्यशास्त्र पर गंभीर और विस्तृत विवेचन तथा नई नई बातों की उद्भावना होती रही।

केशवदास के वर्णन में यह दिखाया जा चुका है कि उन्होंने सारी सामग्री कहाँ कहाँ से ली। आगे होने वाले लक्षण ग्रंथकार कवियों ने भी सारे लक्षण और भेद संस्कृत की पुस्तकों से लेकर लिखे हैं जो कहीं कहीं अपर्याप्त हैं। अपनी ओर से उन्होंने न तो अलंकार क्षेत्र में कुछ मौलिक विवेचन किया, न रस क्षेत्र में। काव्यांगों का विस्तृत समावेश दासजी ने अपने 'काव्यनिर्णय' में किया है। अलंकारों को जिस प्रकार उन्होंने बहुत से छोटे छोटे प्रकरणों में बाँटकर रखा है उससे भ्रम हो सकता है कि शायद किसी आधार पर उन्होंने अलंकारों का वर्गीकरण किया है। पर वास्तव में उन्होंने किसी प्रकार के वर्गीकरण का प्रयत्न नहीं किया है। दासजी की एक नई योजना अवश्य ध्यान देने योग्य है। संस्कृत काव्य में अंत्यानुप्रास या तुक का चलन नहीं था, इससे संस्कृत के साहित्यग्रंथों में उसका विचार नहीं हुआ है। पर हिन्दी काव्य में वह बराबर आरंभ से ही मिलता है। अतः दासजी ने अपनी पुस्तक में उसका विचार करके बड़ा ही आवश्यक कार्य किया।

भूषण का 'भाविक छवि' एक नया अलंकार सा दिखाई पड़ता है, पर वास्तव में संस्कृत ग्रंथों के 'भाविक' का ही एक दूसरा या प्रवर्धित रूप है। 'भाविक' का संबंध कालगत दूरी से है; इसका देशगत से। बस इतना ही अंतर है।

दासजी के 'अतिशयोक्ति' के पाँच नए दिखाई पड़नेवाले भेदों में से चार तो भेदों के भिन्न भिन्न योग हैं। पाँचवाँ 'संभावनातिशयोक्ति' तो संबंधातिशयोक्ति ही है।

देव कवि का संचारियों के बीच छल बढ़ा देना कुछ लोगों को नई सूझ समझ पड़ा है। उन्हें समझना चाहिए कि देव ने जैसे और सब बातें संस्कृत की 'रसतरंगिणी' से ली हैं वैसे ही यह 'छल' भी। सच पूछिए तो छल का अंतर्भाव अवहित्था में हो जाता है।

इस बात का संकेत पहले किया जा चुका है कि हिन्दी के पद्यबद्ध लक्षणग्रंथों में दिए हुए लक्षणों और उदाहरणों में बहुत जगह गड़बड़ी पाई जाती है। अब इस गड़बड़ी के संबंध में दो बातें कही जा सकती हैं। या तो यह कहें कि कवियों ने अपना मतभेद प्रकट करने के लिए जानबूझकर भिन्नता कर दी है अथवा प्रमादवश और का और समझकर। मतभेद तो तब कहा जाता जब कहीं कोई नूतन विचारपद्धति मिलती। अतः दूसरा कारण ही ठहरता है। कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा—

1. केशवदास ने रूपक के तीन भेद दंडी से लिए—अद्भुत रूपक, विरुद्ध रूपक और रूपक रूपक। इनमें से प्रथम का लक्षण भी स्वरूप व्यक्त नहीं करता और उदाहरण भी अधिकतादूप्य रूपक का हो गया है। विरुद्ध रूपक भी दंडी से नहीं मिलता और रूपकातिशयोक्ति हो गया है। रूपक रूपक दंडी के अनुसार वही होता है जहाँ प्रस्तुत पर एक अप्रस्तुत का आरोप करके फिर दूसरे अप्रस्तुत का भी आरोप कर दिया जाता है। केशव के न तो लक्षण से यह बात प्रकट होती है, न उदाहरण से। उदाहरण में दंडी के उदाहरण का ऊपरी ढाँचा भर झलकता है, पर असल बात का पता नहीं है। इससे स्पष्ट है कि बिना ठीक तात्पर्य समझे ही लक्षण और उदाहरण हिन्दी में दे दिए गए हैं।

2. भूषण क्या, प्रायः सब हिन्दी कवियों ने 'भ्रम', 'संदेह' और 'स्मरण' अलंकारों के लक्षणों में सादृश की बात छोड़ दी है। इससे बहुत जगह उदाहरण अलंकार के न होकर भाव के हो गए हैं। भूषण का उदाहरण सबसे गड़बड़ है।

3. शब्दशक्ति का विषय दास ने थोड़ा सा लिया है, पर उससे उसका कुछ भी बोध नहीं हो सकता। 'उपादान लक्षण' का लक्षण भी विलक्षण है और उदाहरण भी असंगत। उदाहरण से साफ झलकता है कि इस लक्षण का स्वरूप ही समझने में भ्रम हुआ है।

जबकि काव्यांगों का स्वतंत्र विवेचन ही नहीं हुआ तब तरह तरह के 'वाद' कैसे प्रतिष्ठित होते? संस्कृत साहित्य में जैसे अलंकारवाद, रीतिवाद, रसवाद, ध्वनिवाद, वक्रोक्तिवाद इत्यादि अनेक वाद पाए जाते हैं, वैसे वादों के लिए हिन्दी के रीतिक्षेत्र में रास्ता ही नहीं निकला। केशव को ही अलंकार आवश्यक मानने के कारण अलंकारवादी कह सकते हैं। केशव के उपरांत रीतिकाल में होनेवाले कवियों ने किसी वाद का निर्देश नहीं किया। वे रस को ही काव्य की आत्मा या प्रधान वस्तु मानकर चले। महाराज जसवंत सिंह ने अपने 'भाषाभूषण' की रचना 'चंद्रालोक' के आधार पर की, पर उसके अलंकार की अनिवार्यता वाले सिद्धांत का समावेश नहीं किया।

इन रीतिग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः शृंगाररस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षणों से चुनकर इकट्ठा करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी। अलंकारों की अपेक्षा नायिकाभेद की ओर कुछ अधिक झुकाव रहा। इससे शृंगाररस के अंतर्गत बहुत सुंदर मुक्तक रचना हिन्दी में हुई। इस रस का इतना अधिक विस्तार हिन्दी साहित्य में हुआ कि इसके एक एक अंग को लेकर स्वतंत्र ग्रंथ रचे गए। इस रस का सारा वैभव कवियों

के नायिकाभेद के भीतर दिखाया। रसग्रंथ वास्तव में नायिकाभेद के ही ग्रंथ हैं जिनमें और दूसरे रस पीछे से संक्षेप में चलते कर दिए गए हैं। नायिका शृंगाररस का आलंबन है। इस आलंबन के अंगों का वर्णन एक स्वतंत्र विषय हो गया और न जाने कितने ग्रंथ केवल नख शिख वर्णन के लिखे गए। इसी प्रकार उद्दीपन के रूप में षट् ऋतुवर्णन पर भी कई अलग पुस्तकें लिखी गईं। विप्रलंभ संबंधी 'बारहमासा' भी कुछ कवियों ने लिखे।

रीतिग्रंथों की इस परंपरा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में कुछ बाधा भी पड़ी। प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न भिन्न चिंत्य बातों तथा जगत् के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और परिमित सी हो गई। उसका क्षेत्र संकुचित हो गया। वाग्धारा बँधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गए। दूसरी बात यह हुई कि कवियों की व्यक्तिगत विशेषता की अभिव्यक्ति का अवसर बहुत ही कम रह गया। कुछ कवियों के बीच भाषाशैली, पदविन्यास, अलंकारविधान आदि बाहरी बातों का भेद हम थोड़ा बहुत दिखा सकें, तो दिखा सकें, पर उनकी आभ्यंतर प्रवृत्ति के अन्वीक्षण में समर्थ उच्चकोटि की आलोचना की सामग्री बहुत कम पा सकते हैं।

रीतिकाल में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युतसंस्कृति दोष का निराकरण होता तो व्रजभाषा काव्य में थोड़ा बहुत सर्वत्र पाया जाता है। और नहीं तो वाक्यदोषों का पूर्ण रूप से निरूपण होता जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती। बहुत थोड़े कवि ऐसे मिलते हैं, जिनकी वाक्यरचना सुव्यवस्थित पाई जाती है। भूषण अच्छे कवि थे। जिस रस को उन्होंने लिया उसका पूरा आवेश उनमें था, पर भाषा उनकी अनेक स्थलों पर सदोष है।[2] यदि शब्दों के रूप स्थिर हो जाते और शुद्ध रूपों के प्रयोग पर जोर दिया जाता तो शब्दों को तोड़ मरोड़ कर विकृत करने का साहस कवियों को न होता। पर इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं हुई, जिससे भाषा में बहुत कुछ गड़बड़ी बनी रही।

भाषा की गड़बड़ी का एक कारण व्रज और अवधी इन दोनों काव्यभाषाओं का कवि के [की] इच्छानुसार सम्मिश्रण भी था। यद्यपि एक सामान्य साहित्यिक भाषा किसी प्रदेश विशेष के प्रयोगों तक ही परिमित नहीं रह सकती, पर वह अपना ढाँचा बराबर बनाए रहती है। काव्य की व्रजभाषा के संबंध में भी अधिकतर यही बात रही। सूरदास की भाषा में यत्र तत्र पूरबी प्रयोग, जैसे—मोर, हमार, कीन, अस, जस इत्यादि—बराबर मिलते हैं। बिहारी की भाषा भी 'कीन', 'दीन' आदि से खाली नहीं। रीतिग्रंथों का विकास अधिकतर अवध में हुआ। अतः इस काल में काव्य

की व्रजभाषा में अवधी के प्रयोग और अधिक मिले। इस बात को किसी किसी कवि ने लक्ष्य भी किया। दासजी ने अपने 'काव्यनिर्णय' में काव्यभाषा पर भी कुछ दृष्टिपात किया। मिश्रित भाषा के समर्थन में वे कहते हैं—

व्रजभाषा भाषा रुचिर कहैं सुमति सब कोइ॥
मिल संस्कृत पारस्यौ पै अति प्रगट जु होइ॥
व्रज मागधी मिले अमर, नाग यवन भाखानि॥
सहज पारसी हू मिले, षट विधि कहत बखानि॥

उक्त दोहों में 'मागधी' शब्द से पूरबी भाषा का अभिप्राय है। अवधी अर्द्धमागधी से निकली मानी जाती है और पूरबी हिन्दी के अंतर्गत है। जबौदानी के लिए व्रज का निवास आवश्यक नहीं है, आप्त कवियों की वाणी भी प्रमाण है, इस बात को दासजी ने स्पष्ट कहा है—

सूर, केशव, मंडन, बिहारी, कालिदास, ब्रह्म,
चिंतामणि, मतिराम, भूषन सु जानिए॥
लीलावर, सेनापति, निपट नेवाज, निधि,
नीलकंट, मिश्र सुखदेव, देव मानिए॥
आलम, रहीम, रसखान, सुंदरादिक,
अनेकन सुमति भए कहाँ लौ बखानिए॥
व्रजभाषा हेत व्रजवास ही न अनुमानौ,
ऐसे-ऐसे कविन की बानी हू सों जानिए॥

मिलीजुली भाषा के प्रमाण में दासजी कहते हैं कि तुलसी और गंग तक ने, जो कवियों के शिरोमणि हुए हैं, ऐसी भाषा का व्यवहार किया है—

तुलसी गंग दुवौ भए, सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली, भाषा विविध प्रकार॥

इस सीधे सादे दोहे का जो यह अर्थ लें कि तुलसी और गंग इसीलिए कवियों के सरदार हुए कि उनके काव्यों में विविध प्रकार की भाषा मिली है, उनकी समझ को क्या कहा जाय?

दासजी ने काव्यभाषा के स्वरूप का जो निर्णय किया वह कोई 100 वर्षों की काव्यपरंपरा के पर्यालोचन के उपरांत। अतः उनका स्वरूप निरूपण तो बहुत ठीक है। उन्होंने काव्यभाषा व्रजभाषा ही कही है जिसमें और भाषाओं के शब्दों का भी मेल हो सकता है। पर भाषा संबंधी और अधिक मीमांसा न होने के कारण कवियों ने अपने को अन्य बोलियों के शब्दों तक ही परिमित नहीं रखा; उनके कारक चिह्नों और क्रिया के रूपों का भी वे मनमाना व्यवहार बराबर करते रहे। ऐसा वे केवल सौंदर्य की दृष्टि से करते थे, किसी सिद्धांत के अनुसार नहीं। 'करना'

रसों के लिए समान रूप से उपयुक्त माना गया था। वास्तव में पढ़ने के ढंग में थोड़ा विभेद कर देने से उसमें दोनों के अनुकूल नादसौंदर्य पाया जाता है। सवैया, शृंगार और करुण इन दो कोमल रसों के लिए बहुत उपयुक्त होता है, यद्यपि वीररस की कविता में भी इसका व्यवहार कवियों ने जहाँ तहाँ किया है। वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगारकाल कहे तो कह सकता है। शृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।

संदर्भ

1. विशेष, दे. केशवदास।
2. देखो, अगले प्रकरण में भूषण का परिचय।

रीतिकाल में प्राकृत-अपभ्रंश की शुद्ध इहलौकिक काव्य-धारा फिर प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है। **गाथा सप्तशती**, **आर्या सप्तशती** जैसी मनोहा सामान्य गृहस्थ जीवन की शृंगारिक रचनाओं की परंपरा रीतिकालीन रचनाओं भरपूर मिलती है। इनमें लोक-जीवन में व्याप्त पारिवारिक प्रेम, मिलन, वि आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। रीतिकाल ऐसे सरस मुक्तकों की दृष्टि हिंदी का सर्वाधिक संपन्न काल है।

इस काल में साथ-ही-साथ भक्ति काव्य भी रचा जाता रहा। अवश्य रीतिकालीन भक्ति काव्य में पूर्व मध्यकालीन भक्ति काव्य की अग्नि नहीं वह भी दरबारीपन से धूमिल है। इसमें कबीर, सूर, जायसी, तुलसी की व्यापक ढूँढ़ने पर आपको निराश होना पड़ेगा।

इस काल की कविता का परम उत्कर्ष प्रेम के रीतिमुक्त कवियों रचनाओं में मिलता है। ये कवि 'प्रेम की पीर' के कवि हैं और इन विरह-भावना सूफ़ी कवियों जैसी है। घनानंद, आलम, बोधा ठाकुर इसी धारा कवि हैं।

रीतिकालीन काव्य को तीन धाराओं में बाँटा जाता है–

1. **रीतिबद्ध धारा**– इस धारा के कवियों ने अलंकार, नायिका-भेद, रो के लक्षण बताकर उनके उदाहरणस्वरूप काव्य रचे हैं–जैसे केश पद्माकर, मतिराम आदि। ये लक्षण-ग्रंथकार मूलतः कवि थे।
2. **रीतिसिद्ध धारा**– इस धारा के कवि लक्षण-उदाहरण की पद्धति नहीं अपनाते, किंतु रचना करते समय लक्षणों का ध्यान अवश्य रख हैं। बिहारी ऐसे ही कवि हैं।
3. **रीतिमुक्त धारा**– इस धारा के कवि लक्षण-उदाहरण की न तो पद्धति अपनाते हैं, न ही लक्षणों का ध्यान रखते हैं। ये प्रेम के, विशेषतः वि के उन्मत्त गायक कवि हैं। घनानंद, आलम, बोधा ठाकुर आदि रीतिमुक्त या स्वच्छंद धारा के कवि हैं। ये कवि स्वाभिमानी थे। इनमें रीतिबद्धता और दरबारीपन के प्रति विद्रोह का भाव है। इस धा की प्रमुख काव्यभाषा ब्रजी है। कवित्त, सवैया, दोहा आदि प्रमुख छ हैं। रीतिकालीन कविता के दरबारीपन पर फ़ारसी काव्य का थोड़ा-सा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। दरबारी कविता प्रधानतः मुक्तकों में और अलंकार-बहुल है।

शिव कवि नामक एक अज्ञातप्राय कवि ने कहा है–

लच्छिमी तिहारी एक कृपा के कटाच्छ बिनु,
केते कूर धूरतन के बदन ध्याइबे परे।
झूठे महिपालन के झूठे गुन गाइ-गाइ,
बानी जगरानी तासों बैर ठानिबे परे।
कहैं सिवकवि दाता सूम को बखानियत,
रन तै बिमुख सूर ठहराइबे परे।
काहु के न बंधन के निज पेट बंधन के,
दौलत के मदंधन के ढिग जाइबे परे।

रीतिकाल के प्रमुख कवियों का परिचय

केशवदास (1555-1617)

केशवदास का जन्म 1555 में और मृत्यु 1617 में हुई। इनके पूर्वज संस्कृत के विद्वान थे। ये ओरछा नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इंद्रजीत सिंह के सभा-कवि थे। यहाँ इनका बहुत सम्मान था। केशवदास द्वारा रचित सात ग्रंथ मिलते हैं– **कविप्रिया**, **रसिकप्रिया**, **रामचंद्रिका**, **वीरसिंह चरित**, **विज्ञान गीता**, **रतन बावनी** और **जहाँगीर-जस चंद्रिका**। **कविप्रिया** और **रसिकप्रिया** काव्यशास्त्रीय पुस्तकें हैं। कहा जाता है कि **कविप्रिया** की रचना महाराजा इंद्रसिंह की पतिव्रता गणिका रायप्रवीण को शिक्षा देने के लिए हुई थी।

केशवदास का उल्लेख राम-भक्ति शाखा के प्रसंग में हो चुका है। उन्होंने 'रामकथा' का वर्णन **रामचंद्रिका** में किया है। किंतु छंदों की विविधता, अलंकारों की बहुलता एवं चमत्कार-प्रियता के कारण उसे भक्ति साहित्य की कोटि में रखना उचित नहीं जान पड़ता। केशव का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने पहली बार संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित काव्यांगों पर हिंदी में विचार किया। इसके पूर्व कृपाराम, मोहनलाल मिश्र, करनेस आदि ने रस, शृंगार और अलंकार पर अलग-अलग पुस्तकें लिखी थीं, पर एक साथ सभी काव्यांगों का परिचय नहीं दिया था। केशव ने यही किया और इसीलिए वे हिंदी के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। वे काव्य में अलंकार को अधिक महत्त्व देते थे। संभवतः इसीलिए उन्होंने आनंदवर्धनाचार्य, मम्मट आदि रसवादी आचार्यों का अनुकरण करके भामह आदि अलंकारवादी आचार्यों का अनुकरण किया। केशव ने जो काव्य विवेचन किया है उसमें मौलिकता नहीं है, वह संस्कृत के काव्यशास्त्र के आचार्यों का अनुकरण है।

केशवदास की रचनाओं में काव्य की दृष्टि से सर्वाधिक विचारणीय रामचंद्रिका है। इसकी रचना केशवदास ने वाल्मीकि के स्वप्न में कहने पर की थी। यह हनुमन्नाटक और प्रसन्नराघव की शैली में रचित है। पृथ्वीराज रासो के समान इसमें छंद जल्दी-जल्दी परिवर्तित होते हैं। रचना नाटकीय संवादों से परिपूर्ण है। एक ही पंक्ति में पात्रों के बीच प्रश्नोत्तर करा देने की शैली में केशवदास निपुण हैं, जैसे भरत-कैकेयी का यह प्रश्नोत्तर–

'मातु! कहाँ नृपताप'? 'गए सुरलोकहिं, 'क्यों'? 'सुत शोक लिए'।

रामचंद्रिका के संवादों की प्रशंसा की गई है। केशवदास दरबारों के वैभव-वातावरण का वर्णन करने में सिद्धहस्त हैं। किंतु कथा-प्रसंगों की समुचित योजना या मार्मिक प्रसंगों की पहचान में प्रायः वे चूक जाते हैं। वाग्विदग्धता, अलंकारों, छंदों के ज्ञान के उपयोग की आतुरता और चमत्कार-प्रियता उनकी सहृदयता को कुंठित कर देती हैं। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें कवि-हृदय मिला ही नहीं था। लक्षणों के उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत उनकी अनेक रचनाएँ सहृदयों को प्रभावित करने में समर्थ हैं।

यद्यपि केशव हिंदी के प्रथम आचार्य हैं, किंतु रीति-ग्रंथों की विरल परंपरा चिंतामणि (1609) से चली। रीति काव्य की परंपरा के प्रवर्तक केशव हैं या चिंतामणि, इसे लेकर विवाद होता है। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ कविकुल कल्पतरु है। इस काल के अन्य प्रसिद्ध आचार्य कवि भीखारीदास (18 वीं शती), ग्रंथनाम काव्य-निर्णय; तोष (1634), ग्रंथनाम सुधानिधि; कुलपति (1670), ग्रंथनाम रस रहस्य; सुखदेव मिश्र (1673), ग्रंथनाम रसार्णव आदि हैं। इनके उपजीव्य संस्कृत ग्रंथ काव्य-प्रकाश, साहित्य दर्पण, रसमंजरी, चंद्रलोक और कुवलयानंद हैं।

सेनापति (1584-1688)

सेनापति का जन्मकाल 1584 है। इनकी रचनाओं से लगता है कि यद्यपि इन्हें कुछ दरबारों में सम्मान हुआ है, किंतु बाद में ये विरक्त हो गए। इनकी दो रचनाएँ हैं–कवित्त रत्नाकर और काव्य कल्पद्रुम। कवित्त रत्नाकर में भक्तिभाव के पद हैं। रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति का उपयोग प्रायः उद्दीपन के ही अंतर्गत किया है, किंतु सेनापति इस काल के अकेले कवि हैं जिनका प्रकृति के प्रति भाव-बोध इतना सहज है कि आधुनिक-सा लगता है। प्रकृति-चित्रण के लिए में उन्हें इस दृष्टि से श्रीधर पाठक के साथ बैठाया जा सकता है। यह संवेदना की बहुत बड़ी विशेषता है। रामकथा पर इनके अनेक छंद मिलते हैं। एक छंद

में इन्होंने शरदपूर्णिमा की चंद्रज्योत्स्ना की उपमा रामचंद्र के यश से दी है– *राम के सों जस अध-ऊरध गगन है।* ऋतुवर्णन में इनका सादृश्य-विधान मौलिक है। वर्षा का यह वर्णन देखिए–

सेनापति उनए नए जलद सावन के
चारिह दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात कैहूँ भाँति
आने है पहार मानो काजर के ढोय कै।
घन सो गगन छ्यो तिमिर सघन भयो
देखि न परत मनो रवि गयो खोय कै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम मानि
मेरे जानि याही तें रहत हरि सोय कै।

रीति सिद्ध कवि

बिहारी (1606-1663)

बिहारी का जन्म सन् 1606 के लगभग हुआ। शुक्ल जी का अनुमान है कि वे 1663 तक विद्यमान रहे। बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि हैं। वे रीति काव्य के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। उन्होंने काव्यांग निरूपण नहीं किया है, किंतु उनकी रचना में काव्य रीति रची-बसी है। वे जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। वहाँ उनका काफ़ी सम्मान था।

बिहारी के यश का आधार सतसई है। इतना कम लिखकर इतना अधिक यश कम साहित्यकारों को मिला होगा। बिहारी सतसई की लोकप्रियता का यह हाल है कि इनकी पचासों टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। और यह काम अभी बंद नहीं हुआ है। बिहारी मूलतः शृंगार के कवि हैं, यद्यपि उन्होंने भक्ति और नीति के भी मार्मिक दोहे रचे हैं।

बिहारी के शृंगारी दोहों में सामंती जीवन का वैभव-विलास ही नहीं चित्रित है, वे सामान्य गृहस्थ के दैनंदिन जीवन के भी सरस चित्र खींचते हैं। देवर, भाभी, जेठ, ननद, सास, पड़ोसिन, वैद्य, ज्योतिषी, खेत, बाग, सरोवर सब के संदर्भ में शृंगार के चित्र खींचते हैं। बिहारी का विषय सीमित है, लेकिन आधारफलक सीमित नहीं। शृंगार अन्य प्रकार के मनोविकारों से टकराता नहीं, इसलिए संकीर्ण लगता है। बिहारी बहुज्ञ थे, उन्होंने अपनी विस्तृत जानकारी का उपयोग अपनी रचनाओं में किया है। एकाध दोहों में उन्होंने सामंतों को ठीक मार्ग

पर चलने या नीति के पालन का उपदेश भी दिया है।

बिहारी अनुभवों के विधान से भाव की व्यंजना में निपुण हैं। यह उनका विशेष कौशल है। इसके लिए वे नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं का वर्णन निहायत सधे ढंग से करते हैं। इस बहुचर्चित दोहे में उनकी यह निपुणता देखी जा सकती है—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करे भौंहन हँसे, दैन कहै नटि जाइ॥

लेकिन बिहारी जब काव्य-रूढ़ियों की सहायता से वस्तु-व्यंजना के लिए चमत्कार दिखाने लगते हैं, तब वे केशवदास के बहुत समान लगते हैं। ऐसे दोहे की अतिशयोक्ति मार्मिकता नहीं उत्पन्न कर पाती, अविश्वास या विनोद की वस्तु बन जाती है।

बिहारी के एकाध दोहे ऐसे भी हैं, जो उनके अनुरागी चित्त की सहज अभिव्यक्ति हैं। जैसे यह दोहा—

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं बहै, वा जमुना के तीर॥

लेकिन यह निरलंकृति बिहारी के यहाँ दुर्लभ है। वे मूलतः उस दरबारी विदग्धता के कवि हैं जो उस समय हिंदी और उर्दू, दोनों भाषाओं के साहित्य के सामंताश्रित कवियों के यहाँ मिलती है।

देव (1673-1767)

देव का जन्म 1673 में हुआ। इनकी मृत्यु का समय 1767 के आसपास माना जाता है। ये अनेक आश्रयदाताओं के यहाँ रहे और इन्होंने उनकी रुचि के अनुकूल रचनाएँ कीं। इनके रचे ग्रंथों की संख्या काफ़ी है। उनमें कुछ इस प्रकार हैं— **भावविलास**, **भवानीविलास**, **रसविलास**, **सुखसागर तरंग**, **अष्टयाम**, **प्रेमचंद्रिका** और **काव्यरसायन**।

देव रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में से हैं। इनकी तुलना बिहारी से की गई है। बिहारी बड़े कि देव, इसे लेकर हिंदी आलोचना में काफ़ी लिखा गया है। देव ने भी लक्षण-ग्रंथ लिखे हैं। अतः इन्हें भी रीतिकाल के आचार्य कवियों की कोटि में रखा जा सकता है। किंतु देव मूलतः आचार्य नहीं, कवि ही थे।

देव में मौलिक रचनाकार की प्रतिभा और सहृदयता प्रचुर मात्रा में थी। लोकप्रियता की दृष्टि से वे बिहारी से बहुत पीछे नहीं हैं। देव की काव्य-भूमि

बिहारी से कहीं अधिक व्यापक है। उन्होंने प्रकृति के क्रियाकलाप को देखकर अनेक उत्तम रूपक बाँधे हैं। जैसे इस कविता में—

डार द्रुम पालना बिछौना नव पल्लव के
सुमन झिंगूला सोहै तन छवि भारी दे।
पवन झुलावै केकी-कीर बहरावैं देव,
कोकिल हलावैं-हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सों उतारो करै राई लोन,
कंज कली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक वसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।

देव रीतिकाल के ऐसे दुर्लभ कवि हैं, जो रूढ़ियों की सहायता के बिना केवल स्थितियों की योजना से मार्मिकता पैदा करते हैं। इससे उनकी कविता में नाटकीयता आती है और जिन मनोविकारों या भावों का चित्रण किया जाता है वे साक्षात् हो उठते हैं। इसलिए देव में उत्कृष्ट बिंब-विधान पाया जाता है। जैसे इन पंक्तियों में—

बड़े-बड़े नैनन सों आँसू-भरि-भरि ढरि
गोरो गोरो मुख आज ओरो सो बिलानो जात।

देव काव्य-कला के कुशल कवि हैं, किंतु चमत्कार या काव्य-रूढ़ियों के आधार पर रचना करने की प्रवृत्ति उनमें बिहारी की अपेक्षा कम है। इसीलिए उनमें चमत्कार करने की अपेक्षा रमाने की प्रवृत्ति अधिक है।

भूषण (1613-1715)

भूषण ने शिवाजी की तो प्रशंसा की ही है, छत्रसाल की भी की है। ये रीतिकाल के दो प्रसिद्ध कवियों, चिंतामणि और मतिराम के सगे भाई थे। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें 'कवि भूषण' कहा। फिर ये इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। वास्तविक नाम कुछ और रहा होगा। ये वीर रस के कवि थे। इन्होंने रीतिकाल की परंपरा में एक अलंकार ग्रंथ **शिवराज भूषण** भी लिखा है। इनके जो अन्य ग्रंथ मिलते हैं, वे हैं— **शिवा बावनी** और **छत्रसाल-दसक**।

रीतिकालीन कविता का प्रधान स्वर शृंगार का है। भूषण का स्वर वीरता का है। इसलिए ये रीतिकाल के विशिष्ट कवि हैं, लेकिन भूषण के महत्त्व पर विचार करते समय कुछ और बातों की ओर भी ध्यान जाता है। रीतिकाल में कुछ अन्य